'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २५ | वाराणसी, गुरुवार, २६ फरवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

पदयात्रियों के साथ

नवावास (बनासकाँठा) ४-१'५९

साधना के सोपान

सूर्योपासना का रहस्य

१. प्रश्न : आपकी सूर्योपासना का क्या आधार है ? इस उपासना का सम्बन्ध वैदिक कल्पना से है या वैज्ञानिक संशोधन से ?

उत्तर : यह कहना कठिन है। यदि व्यक्तिगत रूप में मेरे लिए प्रश्न हो तो मैंने वैदिक साहित्य का अध्ययन काफी किया है और विज्ञान के प्रति भी विशेष प्रेम रखता हूँ। लेकिन मैं तो सूर्य की उपासना करता ही नहीं। जिस तरह घड़ी सामने रखकर उपासना नहीं हो सकती, उसी तरह उगते हुए सूर्य को आँखों के सामने रखकर उपासना करना चाहें तो वह भी नहीं हो सकती। वास्तव में मैं जो उपासना करता हूँ, वह आत्म-सूर्य की उपासना है। उसके बारे में वेद में एक छोटा-सा मन्त्र है :

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'

सूर्य स्थावर-जंगमात्मक जगत की आत्मा है। आत्मा का नाम सूर्य है। इसलिए सूर्य पर भी आत्मा की भावना की जा सकती है। कुरान के एक वाक्य में एक विशेष प्रकार की श्रद्धा व्यक्त की गयी है और वही मेरी श्रद्धा है। उसमें लिखा है कि 'यदि ईश्वर की उपासना करना चाहते हों तो उसने जिन्हें पैदा किया है, उनकी उपासना न करें। सूर्य या चन्द्र, ये सभी भगवान ने पैदा किये हैं। इसलिए इनकी उपासना न कर जिसने इन्हें पैदा किया है, उसकी उपासना करें।' याने कर्ता की उपासना करें, कर्म की नहीं। मैं भी यही मानता हूँ। लेकिन जब सूर्योदय होता है तो निःसन्देह उस समय शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि में प्राण-संचार होता है। इसका जिसे अनुभव हो, वह तो इसे स्वीकार कर ही लेगा। लेकिन जिसे अनुभव न हो, वह भी कल्पना से समझ सकता है। इसलिए मुझे तो सूर्योदय का समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है।

जब हम जेल में थे तो हमारा काफी समय चर्चा में बीतता था। जब कि वहाँ बहुतों को आशा-निराशा या अनेक तरह के दुःखों का अनुभव होता था, मुझे वैसा कुछ भी नहीं लगा। जो कुछ भी होता, सुखमय ही प्रतीत होता था। एक दिन जेलर ने आकर कहा कि 'आपका जीवन बड़ा ही सुखमय दीख रहा है, किसी भी तरह का दुःख मालूम नहीं पड़ता ?' तो मैंने कहा : 'दुःख दीखता तो नहीं, पर है अवश्य। सात दिन विचार कर खोज निकालिये कि आखिर वह कौन-सा दुःख हो सकता है ?' सात दिनों के बाद वह पुनः आया और कहने लगा : 'मैं तो आपको किसी भी तरह दुःखी नहीं पाता।' मैंने कहा : 'सुबह और शाम हमें सूर्य का दर्शन नहीं होता, यही मेरा दुःख है और यह दुःख मिटाने का साधन जेल में नहीं है।'

सूर्य-दर्शन बहुत ही उत्साहप्रद है। हम उसके निमित्त से ईश्वर की उपासना करें तो अच्छा होगा। इस्लाम में रिवाज है कि काबा की ओर मुँह कर उपासना की जाय। काबा हिन्दुस्तान के पश्चिम में है। इसीलिए ये लोग जब उपासना करने बैठते हैं तो सूर्य की ओर पीठ करके बैठते हैं, जब कि हम लोगों में, पुराने समाज में सूर्य की ओर मुँह करके प्रार्थना होती थी। मैं किसी सांप्रदायिक विचार का निषेध नहीं करता, लेकिन मेरा हृदय इसके अनुकूल भी नहीं हो सकता। मुझे सूर्य जैसा दूसरा स्फूर्तिदायक मन्दिर, आश्रम या काबा कोई भी नहीं दीखता। यह इतना बड़ा और महान स्फूर्ति का स्थान है। इसलिए इसे ईश्वर का प्रतीक समझकर परमात्मा की उपासना की जाय तो वह अच्छा होगा।

२. प्रश्न : चिन्तन के साथ सूर्य-उपासना का क्या संबंध है ?

उत्तर : मेरी धारणा है कि सूर्य और हममें एक सम्बन्ध है। उपनिषद में भी एक वाक्य आता है कि सूर्य-किरणें नाड़ियों के मार्ग से हृदय में पहुँचती हैं। सूर्य और हृदय के बीच एक राजमार्ग बना हुआ है और उस रास्ते यहाँसे वहाँ आ-जा सकते हैं। जैसे सूर्य-किरणें हृदय में आ पहुँचती हैं, वैसे ही हृदय भी सूर्य तक पहुँच सकता है। इसका अनुभव मुझे तो होता ही है। मुझे न केवल सूर्य के बारे में ऐसा अनुभव होता है, बल्कि ताराओं के विषय में भी ऐसा ही अनुभव होता है। अभी तक मैं रात में आग्रहपूर्वक खुले आकाश में सोता रहा हूँ। बरसात के दिनों में कुछ समय के लिए कमरे में चला जाता था, लेकिन कई बार तो थोड़ा-बहुत ओढ़कर बाहर ही पड़ा रहता तो पता ही नहीं चलता था कि वर्षा हो रही है। सुबह जब उठता, तब पता चलता कि ऊपर का ओढ़ना भींग गया है याने गहरी वर्षा हुई होगी। इस

तरह रात में आकाश-दर्शन करने पर यह भी अनुभव होता है कि ताराओं और हमारे बीच भी कोई रास्ता बना हुआ है।

सन् १९३६ में फैजपुर-कांग्रेस के समय मैं वहाँ उपस्थित था। वहाँ रात में सभी अन्दर जाकर सो गये, पर मैं बाहर ही सोता रहा। जाड़े के दिन थे। एक स्वयंसेवक मुझे जगाने आया और कहने लगा कि 'आप यहाँ क्यों सोये हैं? जाड़ा बहुत तेज है।' मेरा मौन था, क्योंकि एक बार सो जाने के बाद मैं बोलता नहीं था। अतएव मैंने हाथ ऊँचा कर उसे संकेत से समझाया कि मैं ताराओं के दर्शन के लिए ही बाहर सोया हूँ। लेकिन वह समझ नहीं पाया और डरकर भाग गया। उसे लगा कि यह कोई भूत-प्रेत तो नहीं है। दूसरे दिन मैंने एक आदमी से पूछा कि कल रात जो मुझे जगाने आया था, वह कौन था? उसने कहा कि 'वह तो मैं ही था।' मैंने कहा: 'फिर क्योंकर भाग गये?' उसने बताया: 'आपने एकदम हाथ ऊँचा उठाया तो मुझे लगा कि कोई भयानक आदमी है, जिससे डर लगा और मैं भाग गया।' इस तरह स्पष्ट है कि सूर्य के साथ तो हृदय का संबंध है ही, ताराओं के साथ भी है, ऐसा मुझे लगता है।

३. प्रश्न: हृदय करुणा और प्रेम का स्थान है तो सत्य का स्थान कहाँ है?

उत्तर: प्रेम और करुणा का आन्तरिक स्थान तो हृदय है, लेकिन इनका बाह्य स्थान तो सृष्टि ही है। उसीका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है। इसी तरह सत्य भी सृष्टि में छाया हुआ है और उसका प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ता है, जिसमें कि करुणा और प्रेम का भी प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रेम और करुणा की तरह ही सत्य के लिए भी बाहर और भीतर एक ही स्थान है। बाहर सारा विश्व और भीतर हृदय—सत्य, प्रेम और करुणा का स्थान है।

सत्य-मीमांसा

४. प्रश्न: निम्नलिखित मन्त्रों का क्या अर्थ है?

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ
ये पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥
सत्यमेव जयते नानृतम्,
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
ये नाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः,
यत् तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

उत्तर: यह एक बहुत ही गंभीर मन्त्र है। यद्यपि यह उपनिषद का मंत्र है और वह सूर्योपासना के प्रसंग में नहीं कहा गया है, फिर भी मैं इसका उपयोग सूर्य-चिन्तन में करता हूँ। ह्येष आत्मा हृदय में जैसे आत्मा है, वह भी सूर्य है और यह सूर्य भी आत्मा है। जैसे बाहर सूर्य-ज्योति है, वैसे ही भीतर सत्य-ज्योति है। हमारे पूर्वज इन दोनों ज्योतियों की उपासना किया करते थे। एक ओर सूर्य-प्रतीक था तो दूसरी ओर आत्माप्रतीक! इस मंत्र का ऐसा अर्थ कर सूर्योपासना की जाय तो सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा की प्राप्ति के लिए जो चार साधन बताये गये हैं, इनमें सत्य सबसे पहला है और वह बहुत ही महत्त्व का है। एक ओर दुनिया का सारा नीतिशास्त्र रखा जाय और दूसरी ओर सत्य तो सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य सबसे श्रेष्ठ नीति-धर्म है, जब कि अन्य सभी नीति-धर्म उसके समक्ष गौण हैं। इसीलिए उसे प्रथम स्थान दिया गया है। खासकर आत्म-प्राप्ति के लिए तो सत्य बहुत ही महत्त्व की चीज है। इस सत्य का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा, त्रिविध सत्य है, केवल वाणी का ही सत्य नहीं। यदि मानव-जीवन सत्य पर अधिष्ठित हो तो आत्मा का दर्शन हो जाय।

दूसरा साधन 'तप' बताया गया है। सत्य को समझने के लिए जो मेहनत पड़ती है, उसे ही तप कहते हैं। खासकर यदि इन्द्रियों को वश में कर लिया जाय तो उसके द्वारा सत्य तक पहुँचा जा सकता है और वह बहुत सरल हो जाता है। लेकिन यदि इन्द्रियों पर काबू न पाया जाय और हम उनके वश हो जायँ तो हमारी स्थिति उस घुड़सवार जैसी हो जाती है, जो बैठा तो घोड़े पर है, पर लगाम हाथ में नहीं है। तपस्या में मुख्यतः इन्द्रियों पर काबू पाना ही आता है। इसके बाद सत्यप्राप्ति के लिए जो प्रयोग करना पड़ता है, वह भी उसके (तप के) अन्तर्गत आ जाता है। मानव को बहुत-सी कल्पनाएँ उठती हैं, अन्दर से स्फुरित होती हैं; किन्तु वे उचित हैं या अनुचित, यह समझने के लिए प्रयोग करने पड़ते हैं और उन प्रयोगों के लिए तकलीफ भी उठानी पड़ती है। वही तप है। इस तरह मतलब यह हुआ कि सत्य का प्रयोग करना और उसके लिए कष्ट उठाना ही तप है।

तीसरा साधन सम्यक् ज्ञान है। वस्तु के स्वरूप का आकलन करने के लिए योग्य बुद्धि अपेक्षित हुआ करती है। योग्य बुद्धि का अर्थ है अनासक्त बुद्धि, जिसमें पूर्वग्रह न हो। इस तरह पूर्वग्रह रहित बुद्धि द्वारा ही आत्मा का दर्शन होता है।

चौथा साधन ब्रह्मचर्य बताया गया है। यहाँ ब्रह्मचर्य और तप अलग-अलग बतलाये गये हैं, इसलिए ब्रह्मचर्य से मुख्यतः अध्ययन, चिन्तन, मनन आदि समझ लेना चाहिए। अन्यथा तप का अलग साधनरूप में निर्देश व्यर्थ हो जायगा; कारण ब्रह्मचर्य में तप आ ही जाता है।

इस तरह विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सत्य एक नैतिक मूलतत्त्व है, उसके साथ ये तीन साधन भी होने पर आत्मा का दर्शन हो सकता है।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभो इस तरह जैसे बाहर सूर्य-नारायण उदित होता है, वैसे ही अन्दर भी सूर्यनारायण उदित है। जैसे बाहरी सूर्य बाहरी बादलों से ढँक जाता है तो उसका दर्शन नहीं हो पाता, वैसे ही हृदय पर परदा पड़ जाने से आन्तरिक ज्योति का भी दर्शन नहीं हो पाता। आन्तरिक सूर्य अत्यन्त ज्योतिर्मय है। याने जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है, वैसे ही उसमें भी स्वयंप्रकाशता है।

यतयः क्षीणदोषाः यति याने यत्न करनेवाले संन्यासी। इसका सीधा अर्थ तो 'यत्न करनेवाला' यह होता है। साधक जब क्षीणदोष होते हैं, तभी आत्मा का दर्शन होता है। जब तक दोष हैं, तभी तक आवरण रहता है। अतः आत्मा के दर्शन के लिए दोष-निरसन एक उत्तम उपाय है। इस तरह चार साधन बताये गये। इनका उपयोग कर यदि दोष क्षीण हो जायँ तो अन्तःस्थित सूर्य का दर्शन हो सकता है।

सत्यमेव जयते ये अलग-अलग वाक्य मालूम पड़ते हैं, लेकिन दोनों मिलकर एक ही वाक्य है। एक ओर कहा जाता है कि सत्य की विजय होती है और दूसरी ओर कहा गया है अनृत याने असत्य की कभी भी विजय नहीं होती। ऊपर जो साधन बताते गये हैं, उनमें सत्य ही प्रधान माना गया है। इसमें भी उसी सत्य पर जोर दिया गया है। देवदर्शन का मार्ग सत्य से फैला हुआ हैं। देवयानः का अर्थ है, देवता की ओर जाने का मार्ग—परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग सत्य से ही बना हुआ है।

येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामाः जो ऋषि पूर्णतः निष्काम हैं और जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं, वे उस आत्मा का दर्शन कर रहे हैं। उनका प्राप्तव्य स्थान सत्य है, वहाँ पहुँचने का मार्ग सत्य है और उस दर्शन से जो प्राप्त होगा, वह भी सत्य है। इस तरह चलने का साधन, चलने का मार्ग और पहुँचने की अन्तिम मंजिल, तीनों सत्य हैं। सत्य के ही ये तीन अलग-अलग अंग हैं। कुल मिलाकर पूरे मंत्र का यही अर्थ है।

दोषों के माध्यम से गुणों तक पहुँचें

प्रश्न : आप कहते हैं कि दोष गुणों की छाया है। यह कैसे ?

उत्तर : गुण और दोषों का पृथक्करण करना सदैव कठिन हुआ करता है। कोई विशेष गुण किसी मानव में हो और वह उसका विकास करे तो वह एकांगी गुण-विकास होगा। फिर उसके कारण स्वाभाविक ही दोष प्रकट होंगे। मान लीजिये, कोई विरक्त पुरुष आग्रही है तो दूसरा विवेकी है। विवेकी कुछ ढिलाई रखता है, क्योंकि विवेक में कुछ ढीलापन चल भी जाता है। इस तरह ढिलाई का दोष विवेकी पुरुष में आ ही जाता है। हम लोग रेखाओं से चित्र अंकित करते हैं तो उससे पहले कागज सफेद ही होता है। अतः रेखाएँ गुण कहलायेंगी और कागज पूर्व-भूमिका। जिस तरह सफेद कागज की पूर्व-भूमिका के बिना रेखाओं का चित्र उभर नहीं सकता, उसी तरह दोष के बिना गुण का प्रकाश नहीं हो सकता। यदि मानव में शुद्ध गुण ही हों तो वे अप्रकट ही रहेंगे। भगवान भी शुद्ध गुणमय हैं, अतएव वह प्रकट नहीं होता--वह अप्रकट ही है। गुणों को प्रकट करने के लिए छायारूपी शरीर की जरूरत हुआ करती है। इसलिए दोष आवश्यक हैं। अतएव दोषों के उपकार ही मानने चाहिए।

मानव में गुणों के साथ दोष भी हुआ ही करते हैं। आत्मा के प्रकाश के लिए शरीर आवश्यक होता है, इसी तरह गुणों के प्रकाश के लिए दोष आवश्यक ही हैं। कोई स्वतन्त्र प्रकृति बालक हो तो वह किसीकी आज्ञा नहीं मानता और आज्ञा माननेवाला स्वतंत्र बुद्धि से विचार नहीं कर पाता। वह श्रद्धावान होता है, पर बुद्धि से विचार नहीं करता। इस तरह गुण के साथ दोष और दोष में गुण मिला ही हुआ है। उनमें छाया कौन है और रूप कौन, इसका विवेक करना चाहिए। आत्मा का रूप है गुणमय और दोष हैं छायारूप। दोषों का अस्तित्व गुणों की शोभा या सौन्दर्य-प्रकाशन करने के लिए ही है।

इस तरह हम चिन्तन करें तो सृष्टि के प्रति अत्यन्त आदरभाव उत्पन्न होता है। किसीमें कोई भी दोष हो तो उसके माध्यम से उसके गुणों तक पहुँच पाते हैं। इस प्रकार दोष-दर्शन का गुण-दर्शन के साधनरूप में उपयोग करें तो दोष मिट जायँ और गुण में प्रवेश करने का साधन हाथ लग जायगा। यह एक विचित्र बात मैं कह रहा हूँ। मान लीजिये, कोई बहुत प्रेमी है तो प्रेम के साथ-साथ काम भी उत्पन्न होने की आशंका रहती है। इसी तरह विरक्ति के साथ क्रोध, ज्ञान के साथ आग्रह और भक्ति के साथ मुलामियत भी होने की संभावना रहती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुणों के लिए दोष आवश्यक हैं।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दोषी गुणों के लिए अपने दोषों का संग्रह किये रहे। उसे ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो वह दोषवान ही होगा। किन्तु जब हम दूसरों के लिए सोचें तो उनके दोषों को इसी प्रकार सोचकर माफ कर दें। क्रियाशील व्यक्ति में थोड़ा-बहुत अहंकार रहेगा ही, इसलिए उसे आँखों से ओझल कर देना चाहिए। बापू प्रायः कहा करते थे कि 'दुधारू गाय की लात भी खानी चाहिए।' इस तरह यदि उस क्रियाशील पुरुष में अभिमान हो तो ऐसा सोचना चाहिए कि 'यदि उसमें इतना अभिमान न होता तो इतनी क्रियाशीलता ही न रह पाती। अतः यह जो अहंकार है, वह ठीक ही है, इससे कोई हानि नहीं होती।' अवश्य ही उसके अहंकार को मिटाने का उचित प्रयत्न करना चाहिए, फिर भी यदि वह रह जाय तो उसे माफ कर देना चाहिए।

साम्यं समाधानम्

४ प्रश्न : साम्ययोग में जीवन-धारणार्थ समता कैसे रखी जाय ?

उत्तर : समता के प्रति विवेक रखना एक अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। इसका महत्त्व तब और भी बढ़ जाता है, जब कि हम लोग साम्ययोग की बातें करने लगे हैं। बापू भी समता का आग्रह रखते ही थे। उन्होंने वाइसराय तक को लिख डाला कि 'क्या आपको बीस हजार रुपये वेतन लेना शोभा देता है ? आपके और जनसाधारण के वेतन में इतनी अधिक विषमता किसी तरह सहन नहीं की जा सकती।' मैं मानता हूँ कि आप लोग तो धार्मिक हैं, अतः अधिकतर धर्म में ही खर्च करते होंगे। फिर भी इतनी अधिक विषमता उचित नहीं है।

आजकल विभिन्न देशों के बीच स्थूल तुलना की जाती है। कहा जाता है कि अमुक देश में अधिक-से-अधिक आय और कम-से-कम व्यय में ५ और ४० का अन्तर है। इतना अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। १० का अन्तर तो खप भी सकता है। इस तरह स्थूल रूप से हिसाब लगाने की एक आदत ही बन गयी है। वास्तव में यह अच्छी बात नहीं। मुझे कोई पूछे कि क्या आपको दस प्रतिशत का अन्तर नहीं चल सकता तो मैं यही कहूँगा कि मुझे जितना अपेक्षित है, उतना मिलना चाहिए, किसी की अपेक्षा दस अधिक क्यों ? दस की अधिकता की कल्पना भी गलत है। सृष्टि में इतना अधिक पैदा होना चाहिए कि जिसे जितना अपेक्षित हो, उतना मिलता रहे और दूसरे के पास कुछ पड़ा हो तो हमें उसकी आवश्यकता ही न पड़े। फिर वह आदमी भी उस अधिक वस्तु को ट्रस्टी के तौर पर अपने पास रखे, उसके मालिक के तौर पर नहीं।

यह एक आर्थिक दृष्टि हुई, लेकिन दूसरी भी एक दृष्टि है। खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने मांसाहार छोड़ दिया तो वे बहुत ही कमजोर हो गये। अतः उनसे आग्रहपूर्वक कहा गया कि आप मांस ले लें तो अच्छा हो। किन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। फिर उनके लिए अंडे लाये गये। इसपर बाद में काफी चर्चा हुई। हमारे उन साथियों को, जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है, यह बात बड़ी बेतुकी मालूम पड़ी कि हम लोग मांस खाने की बात कैसे कहते हैं ? किन्तु इसके पीछे एक सूक्ष्म दृष्टि है। हम लोग अनन्त जन्मों के यात्री हैं। हमारी इस सृष्टि और इस जिन्दगी में इतना अधिक मोह है कि सभी उसके शिकार हो जाते हैं। लेकिन मैं तो इस मोह का शिकार नहीं हूँ। सोचने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मुझे इन सभी मोहों का अनुभव पूर्वजन्म में हो चुका है, इसलिए इस जन्म में इनके प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया है। अतः स्वाभाविक रूप से मैं इससे छूट गया हूँ। दूसरों का यह मोह छूटा नहीं, इसका अर्थ है कि उन्होंने अभी तक उसका अनुभव नहीं किया, इसलिए इस जन्म में कर रहे हैं। इस तरह ध्यान में आ जाता है कि हम सभी अनन्त जन्मों के यात्री हैं और कोई दो कदम आगे बढ़ा हुआ है तो कोई

दो कदम पीछे। अतः सभीके प्रयोग चलते ही रहेंगे।

यदि हम सर्वथा समता का आग्रह रखेंगे तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक संभावना रहेगी। सृष्टि की विविधता मिटाकर एकता का अनुभव हो तो वह अद्वैत का अनुभव नहीं कहा जा सकता। हमारे कार्यकर्ताओं में ही जे० पी० जैसे कितने ही लोग हैं, जिनका जीवन-स्तर औरों की अपेक्षा कुछ ऊँचा है। लोगों को यह अच्छा नहीं लगता और खुद वे लोग आज की अपेक्षा कुछ कम करने का प्रयत्न भी करते रहते हैं, फिर भी वह सध नहीं पाता। अतः दूसरों को समझाना चाहिए कि हममें से अमुक-अमुक को पहले से ही अमुक आदत है। उनकी शारीरिक स्थिति देखते हुए अधिक समता लाने का प्रयत्न करेंगे तो वह ठीक न होगा। अपने घर में भी हम ऐसा नहीं करते। घर में एक-दूसरे के प्रति प्रेम रहता है, लेकिन सभीके लिए सब कुछ समान होता है, ऐसी बात नहीं। घर में हम सब कुछ समाधानपूर्वक ही किया करते हैं। इसके लिए मैंने एक सूत्र ही बनाया है—'साम्यं समाधानम्।' जिसमें सबका समाधान हो, वही साम्य है। घर में छोटे बच्चों के लिए अधिकार नहीं, कर्तव्य ही रहता है। माता-पिता ही प्रधान हुआ करते हैं। फिर जब वे बूढ़े और बच्चे जवान हो जाते हैं तो पहले के बच्चे ही प्रधान बन जाते हैं और उन्हींकी बुद्धि से घर का सारा काम चलता है। इस तरह कभी पिता प्रधान तो कभी पुत्र प्रधान होता है। दोनों में प्रेम तो रहता ही है। अतः सृष्टि में प्रेम के कारण जो कुछ करना पड़े, उससे साम्ययोग में किसी तरह की बाधा नहीं आती। यदि हम गणितो साम्ययोग करते जायँगे तो दुनिया से आनन्द ही मिटा देंगे।

क्या गृहस्थ शान्ति-सैनिक हो सकता है?

७. प्रश्न : क्या गृहस्थाश्रमी शान्ति-सैनिक बन सकता है?

उत्तर : शान्ति-सैनिक यदि गृहस्थाश्रम पार कर संयमपूर्वक रहता हो तो अच्छा ही है। किन्तु बाल-बच्चे होते हुए भी कोई शान्ति-सैनिक बनना चाहे तो उसमें कोई बाधा नहीं है। फिर भी परिवार का बोझ बढ़ने से वह उतना मुक्त नहीं रह सकता, जब कि शान्ति-सैनिक का हृदय काम के लिए खुला रहना चाहिए।

ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जो 'चर्य' (आचरण) किया जाय, वही ब्रह्मचर्य है। भीष्म का ब्रह्मचर्य आरंभ में ब्रह्मचर्य नहीं, पितृचर्य था। पिता के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य रखा। फिर वही पितृचर्य ब्रह्मचर्य में परिणत हो गया। इसी तरह बापू का ब्रह्मचर्य भी आरंभ में शान्तिचर्य ही था। वे जब दक्षिण अफ्रिका में सख्त काम करते थे तो उन्हें लगा कि एक ओर ऐसा सारा काम किया जाय और दूसरी ओर परिवार बढ़ाते जायँ, यह ठीक नहीं है। उनका यही शान्तिचर्य धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य में परिणत हो गया, ऐसा मैं मानता हूँ। अतः ब्रह्मचर्य के लिए प्रयत्न करना शान्ति-सैनिक का कर्तव्य होने पर भी गृहस्थाश्रमी शान्ति-सैनिक बन सकता है।

चढ़नेवाले का गिरना स्वाभाविक और क्षम्य

८. प्रश्न : भूदान-कार्यकर्ताओं से सर्वाङ्गीण नैतिक पवित्रता के प्रतिज्ञापत्र लेने चाहिए, जैसे कि जैन साधुओं से जैन-समाज में प्रतिज्ञापत्र लिखवाये जाते हैं। साथ ही जिस तरह साधुओं के समाज में साधु का पतन होने पर उसे समाज सहज ही गृहस्थी में प्रवेश करने के लिए बाध्य कर देता है, वैसे ही यहाँ भी कुछ होना चाहिए।

उत्तर : मेरा प्रतिज्ञापत्रों में विश्वास नहीं। अवश्य ही शान्ति-सैनिक के लिए सूक्ष्म रीति से अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और शरीर-श्रम इन प्रमुख चार शर्तों के सिवा ये शर्तें रखी गयी हैं कि यह निष्काम भाव से काम करे, दलबन्दी में न पड़े, भूदानमूलक कार्य में चिन्तनसर्वस्व लगाये और समय पड़ने पर कहीं भी पहुँचकर शान्ति के लिए जान जोखिम में डालकर सर्वस्व समर्पण की तैयारी रखे। फिर भी पवित्रता के प्रतिज्ञापत्र लेने में मुझे कोई रुचि नहीं। जैन-समाज ने इतनी तपस्या की है कि उनसे कोई पतन हो जाय तो मुझे उसकी कोई परवाह नहीं। ढाई हजार वर्षों से उनकी तपस्या चल रही है। कितना अधिक काम हुआ, यह तो इतिहास ही बताता है। जैन-दर्शन के दस हजार वर्ष पुराने ग्रन्थ पड़े हैं। अत्यन्त सूक्ष्म विवेक और तपश्चर्या की गयी है। फिर यदि किसी साधक का पतन हो जाता है तो कोई बात नहीं। जो घोड़े पर चढ़ता है, वह गिरता ही है। किन्तु हम ऐसी कोई प्रतिज्ञा ही नहीं करवाते, जिसका भंग हो। फिर हमने लौटने का क्षेत्र भी खुला रखा है। हर कोई अपने विवेकपूर्वक आचरण कर सकता है।

कुछ दिन पूर्व जे० पी० के साथ एक अमेरिकन दार्शनिक आये हुए थे। उनके साथ हिंसा और अहिंसा के बारे में चर्चा हुई। जे० पी० उन्हें समझा रहे थे कि यदि हम आज थोड़ी भी हिंसा के जाल में पड़ेंगे तो उतरोत्तर वह बढ़ती ही जायगी। इसपर वे दलील कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि 'यदि आप जैसे सत्पुरुषों को यह लगता हो कि अमुक अवसर प्रेम और करुणा से हिंसा करने का अवसर है तो मैं आपको माफ कर दूँगा।' फलस्वरूप वह वाद मिट गया। इसी तरह कार्यकर्ता यदि सत्य, अहिंसा आदि के आचरण में कुछ भूल भी कर जायँ तो हम उन्हें क्षमा कर देंगे। वैसे उन्हें पूरा अवकाश है कि वे व्यापक रूप में अपना विकास करें। हम कोई सांख्यशास्त्री नहीं कि सत्य, अहिंसा आदि का अमुक परिमाण में और अमुक प्रकार से ही पालन किया जाय। ये वृत्तियाँ हैं, यह ध्यान में रखकर काम करें तो बस है।

❁ ❁ ❁

"गाय हम मानवों के सर्वथा अधीन है। हम उसे खत्म कर सकते और बचा भी सकते हैं। खत्म ही कर देना चाहें तो हिंसा से एक दिन में खत्म हो सकती है। यदि अहिंसा से खत्म करना चाहें तो अधिक-से-अधिक एक पीढ़ी तक प्रतीक्षा करनी होगी। सब बैलों की खसी कर दें, उन्हें नामर्द बना दें तो २५ साल में सारा गोवंश मिट सकता है। फिर उसकी रक्षा करना चाहें तो हम ही कर सकते हैं। हमारे इर्द-गिर्द कुछ गायें रह सकती हैं और हम उनमें एकान्तभाव का दर्शन भी कर सकते हैं। कारण मानवेतर प्राणियों में तो अत्यधिक संकुचितता पायी जाती है। वे अपनी जाति के बाहर आत्म-दर्शन कर ही नहीं सकते। कुत्ते को कुत्ते से बाहर आत्म-दर्शन होता ही नहीं; जो कुछ होता है, अपनी जाति के अन्दर ही। उसमें भी एक कुत्ता किसी कुतिया के साथ दूसरे कुत्ते को देख लेता है तो भी आत्म-दर्शन खो बैठता है—उससे लड़ने लगता है। किन्तु मानव की बात ऐसी नहीं। हमारे ऋषियों की भी यही आकांक्षा रही है कि मानव मानवेतर प्राणियों में व्यापक आत्म-दर्शन कर आनन्द की अनुभूति करे।"

❁ ❁ ❁

सरकारी कर्मचारियों के साथ

भीलोड़ा (साबरकाँठा) ११-१-'५९

आप सरकारी नौकर नहीं हैं !

सारे भारत में, विभिन्न राज्यों के विभिन्न विभागों और केन्द्र के सभी विभागों को मिलाकर ५५ लाख नौकर हैं तथा उनपर प्रति वर्ष २०० करोड़ रुपया खर्च होता है। किन्तु जब मैं शान्ति-सेना के लिए कार्यकर्ताओं की, सेवकों की माँग करता हूँ कि 'मुझे पक्षमुक्त सेवक चाहिए' तो वे नहीं मिल पाते। आज जो पचपन लाख सेवक हैं, क्या वे देश के सेवक नहीं हैं? क्या वे पक्षमुक्त समाज के नहीं हैं? सच पूछें तो उन्हें जनता की, देश की सेवा के लिए ही इतना वेतन दिया जाता है और सेवकों का कर्तव्य होता है कि वे सर्वथा निष्पक्ष रहें। मैं सेवकों की माँग इसीलिए करता हूँ कि जनता की स्वतन्त्र शक्ति खड़ी हो। सरकारी योजना भी इसीलिए चलती है। इसलिए जब हमारे सेवक गाँव-गाँव जाकर भूदान, ग्रामदान का विचार पहुँचाते हैं, लोगों को समझाने का प्रयत्न करते हैं तो उनके इस काम में पूरी मदद देना, सहकार करना सरकारी नौकरों का काम हो जाता है। मैं तो उनसे यहाँ तक कहूँगा कि आप सरकार के नहीं, हमारे नौकर हैं। मैं आपको वेतन सरकारी खाते से दिला रहा हूँ। आप नौकर बाबा के हैं। इसलिए गाँव-गाँव पहुँचकर सर्वोदय का विचार समझाना आपका कर्तव्य है। यह जिम्मेदारी आप लोगों पर भी है, अतः इसे आप लोग उठायें।

भेदों से ऊपर उठकर काम करें

इसके साथ ही आप लोग घर में पाँच भाई हों तो मुझे छठा भाई समझकर अपने वेतन का एक हिस्सा दीजिये। मैं मानता हूँ कि आपको अधिक वेतन नहीं मिलता, फिर भी आप उसमें से एक हिस्सा सम्पत्तिदान में देंगे तो लोगों को भी यह अनुभव होने लगेगा कि ये सचमुच हमारे सेवक हैं। उन्हें भी लगेगा कि ये हमारे हित की बात करते हैं। लोगों में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। इस तरह लोगों का विश्वास प्राप्त कर आप उनके बीच काम करने, विचार-प्रचार करने पहुँचेंगे तो उसका बड़ा ही असर होगा। आज जनता अपने पैरों पर खड़ा होने की सामर्थ्य नहीं रखती। अतः आप सरकारी सेवक, गाँव की पंचायत, सर्वोदयवाले—सभी लोग मिलकर काम करें तो जनता का बहुत ही शीघ्र उत्थान हो सकता है। इस तरह आप लोग मिलकर काम करें तो आज जितनी सत्ता आपके हाथ में है, उससे भी अधिक सत्ता प्राप्त होगी।

पंचायतवालों का कर्तव्य है कि कभी भी गाँव में दलबन्दी न रहने दें। यदि गाँव में फूट रहेगी तो कभी भी वह प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए गाँव-पंचायतवाले हर तरह से पूरे गाँव की एकता बनाये रखें। किसी भी प्रकार के जाति-भेद का गाँव में अवकाश न होने दें। उन्हें भूदान, ग्रामदान और सर्वोदय के काम करनेवालों की पूरी मदद भी करनी चाहिए। सहकारी समितियों के लोग देश के लिए प्राणस्वरूप हैं। एक-एक व्यक्ति कितना काम कर सकता है? सहकार से ही बड़ा-से-बड़ा काम आसान हो जाता है। हम सहकार नहीं करते, इसलिए शक्ति प्रकट नहीं होती। मान लीजिये, ग्रामदान हो और सहकार के लिए मदद मिले, सबकी जमीन सहकारी बन जाय तो कितनी अधिक शक्ति पैदा होगी।

इसलिए सरकारी सेवक, ग्राम-पंचायत, सहकारी सेवक और हमारे सर्वोदय-सेवक—चारों को मिलकर काम करना चाहिए। आज देखा जाय तो इनमें परस्पर किसीसे नहीं बनती। हमारे सर्वोदय-सेवकों में भी आपस में अच्छी बनती है, ऐसा मुझे तो विश्वास नहीं हो पाया। आज हर कोई अपनी-ही-अपनी देखता है। कोई इधर तो कोई उधर मुँह कर अलग-अलग दिशा में रह रहे हैं। किन्तु यह जानवरों का काम है। जंगल में शेर एक ओर रहता है, सियार एक ओर तो हिरन एक ओर। वे सहकार करना नहीं जानते। पर हमें तो सहकार करना ही चाहिए। हम सब मिलकर काम करेंगे, लोगों की कठिनाइयों में मदद देंगे तो उनका विश्वास प्राप्त करेंगे। सचमुच यदि सरकारी नौकर, ग्राम-पंचायतवाले, सहकारी, सेवक और ग्रामदान-सेवकों की चतुरंग सेना बन जाय और वे परस्पर विचार-विनिमय कर जनसेवा के काम करें तो वह कितने महत्त्व की बात होगी!

ऐसा ही एक प्रस्ताव अभी दिल्ली में पास हुआ है। उसमें कहा गया है कि कम्यूनिटी प्रोजेक्टवालों और सर्व-सेवा-संघ के कार्यकर्ताओं, दोनों का अच्छा सहकार हो तथा परस्पर एक-दूसरे की मदद करें। बहुत से लोग यह जानते भी न होंगे और आज जब मैं यह कह रहा हूँ, तभी उन्हें इसका पता चला होगा। सर्व-सेवा-संघ से यह भी माँग की गयी है कि जब कम्यूनिटी प्रोजेक्ट का प्रशिक्षण दिया जाय तो आप लोग उन्हें सर्वोदय का विचार भी समझायें, सर्वोदय का साहित्य भी भेजा जाय। जहाँ-जहाँ कम्यूनिटी प्रोजेक्ट हो, वहाँ सर्वोदय-साहित्य होना ही चाहिए। इस तरह देखें तो प्रस्ताव तो पास है ही, लेकिन यह काम तभी बन सकता है, जब परस्पर एक-दूसरे के प्रति विश्वास हो। मैंने तो एक श्लोक ही बनाया है। वेदान्त, विश्वास और विज्ञान इन तीनों की इस युग में नितान्त आवश्यकता है। आज देश में अविश्वास की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि तीन-चार बच्चों की माँ बन जाने और अपने साथ दस-बीस वर्ष तक रहने पर भी पति पत्नी पर विश्वास नहीं करता। हमें प्रेम करना आता ही नहीं।

प्रेम ही जीवन का आधार

हम लोग बचपन में हमेशा यह गाना गाते थे :

'मात-प्रेम, तात-प्रेम, पुत्र-प्रेम, पुत्रि-प्रेम।
प्रेम छे संसार-सार, प्रेम छे संन्यासाधार॥'

याने संन्यासी भी घर-द्वार छोड़कर निकल पड़ता है तो व्यापक प्रेम के लिए ही। संन्यास का आधार भी प्रेम ही है तो संसार का सार प्रेम है, यह अलग बताने की जरूरत ही नहीं। हमें ऐसा भास होता है कि हम जो करते हैं, वह प्रेम ही है। लेकिन ऐसी बात नहीं। हम भोग की चाह रखते हैं तो वहाँ प्रेम नहीं। वह तो वासना का लक्षण है। सोचने की बात है, क्या हम अपनी पत्नी, भाई, पड़ोसी पर सचमुच प्रेम करते हैं? यदि हम उन्हें अपना सब कुछ देना चाहें और उनसे कुछ भी लेना न चाहें, तभी वह सच्चा प्रेम कहलायेगा। यदि हम उनसे लेने की आशा रखें तो फिर वह सौदा ही हो जायगा। प्रेम होने पर तो मानव देता ही रहता है, लेने का नाम नहीं लेता। देने में ही उसे समाधान और आनन्द होता है। ऐसे निष्काम भाव से देने में ही प्रेम है। बिना प्रेम के संसार में सार नहीं। प्रेम के बिना उद्धार ही नहीं।

सचमुच छाती में खिड़की न बनाकर भगवान ने बड़ी भूल की। यदि वहाँ खिड़की होती तो साफ दीख पड़ता कि किसके हृदय में क्या है? किन्तु हमें चाहिए कि हम इस भूल को सुधार कर अपने हृदय खुले रखें। एक भी बात ऐसी न हो, जो लोगों से

छिपी हो। लोगों के सामने सब कुछ खोलकर रख देना चाहिए। सूर्यनारायण सबके सामने खुला है, नग्न है। इसी तरह हमें भी अपने हृदय खुले रखने चाहिए। जिसका हृदय खुला हो, वह सबपर विश्वास रख सकता है और सभी उसपर विश्वास रख सकते हैं। लेकिन आज इस विश्वास की मात्रा हमारे देश में कम है। यदि यह चतुरंग-सेना एक-दूसरे पर विश्वास रखे और हर काम के लिए एक-दूसरे से सलाह-मशविरा करे तो काफी शक्ति बढ़ जायगी, जिससे जनता को भी काफी सहारा मिलेगा। जनता को आज इसकी सख्त जरूरत है। स्वराज्य मिला, पर जनता के दुःख अभी मिटे नहीं हैं। उन्हें मिटाने के लिए जीवन-सर्वस्व अर्पण करना होगा।

• • •

जिला कार्यकर्ताओं के बीच

चांडप (सावरकाँठा) ६-१-'५९

संयोग से बचनेवालों के लिए वियोग में पूरी भक्ति करना अनिवार्य

भगवान गौतम बुद्ध का एक नाम 'सुगत' था। 'सुगत' का अर्थ है, वे अच्छी तरह गये। मानव के जीवन का वास्तविक मूल्य तभी आँका जाता है, जब वह यहाँसे कूच कर देता है। यद्यपि यह सच है कि जन्म के समय बड़ा उत्सव मनाया जाता है और सोचा जाता है कि भगवान की एक प्रतिमा ही अवतरित हुई है,न जाने इसमें कैसा रत्न छिपा हो, यह कितना बड़ा महात्मा बन ले! इस तरह जन्म लेनेवाले का बड़ी-बड़ी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं से स्वागत किया जाता है। लेकिन उस समय मानव-मूल्य नहीं आँका जा सकता। वह तो मरने के बाद ही आँका जाता है। इस दृष्टि से देखें तो अभी आप लोग मेरा जो स्वागत करते हैं, उससे क्या बाबा का मूल्य आँका जा सकता है? जब अन्त समय में मेरी यात्रा का कुछ परिणाम आयेगा और आप बाबा को बिदा दोगे—गुजरात से ही नहीं, इस दुनिया से—तभी कह सकते हैं कि हम लोगों ने बाबा को अच्छी तरह भेजा और वे बहुत अच्छी तरह गये, वे 'सुगत' बने। इसलिए स्वागत में प्रेम प्रकट होना ठीक ही है, लेकिन सुगत करने के लिए केवल प्रेम ही नहीं, उससे भी आगे का कदम करुणा प्रकट होनी चाहिए। याने साक्षात् कृति कैसी रही, यह प्रकट होना चाहिए।

मैं तो यहाँ कुछ हिसाब ही नहीं रखता। गुजरात में ११३ दिन यात्रा हुई। इसका परिणाम क्या हुआ, यह मैं नहीं सोचूँगा। अन्य प्रान्तों में कुछ सोचना भी पड़ता था, पर यहाँ नहीं सोचता; क्योंकि यहाँवाले खुद हिसाबी हैं। इतना ही नहीं, वे पूँजी पर सूद भी उगाते हैं। मैं सूद लेना तो उचित नहीं मानता, फिर भी आप लोगों से सूदसहित मूलधन चुकता कर देने की आशा करता हूँ।

यहाँ मुझे जो प्रेम-दर्शन हो रहा है, वह मिथ्या नहीं है। स्वाभाविक प्रेम का ही दर्शन है। बिहार में जो श्रद्धा, उमंग, उत्साह और प्रेम का उभार दीखा, उसका यहाँ भी दर्शन हुआ है। यहाँ जनता और सेवकों ने सच्चा प्रेम दिखलाया। फिर भी हिसाबपूर्वक प्रेम दिखलाया। बहुत से लोग बाबा के बारे में सन्देह रखते थे कि 'इनके विचार बहुत क्रान्तिकारी हैं। ये हम लोगों के लिए हितकर होंगे या नहीं?' किन्तु जब उन्होंने ठीक-ठीक समझ लिया कि सचमुच ये विचार हमारे हित के हैं, तब उनका बँधा हुआ प्रेम का बाँध भी टूट पड़ा। उन्होंने खुलकर प्रेम किया। ऐसी शक्ति सबमें नहीं हुआ करती, किन्तु मुझे यहाँ वह दीख पड़ी। मनुष्य का यह स्वभाव मुझे बहुत ही पसन्द है।

भक्त और योगियों का आत्म-प्रत्यय

मानव में एक प्रकार की सत्यनिष्ठा हुआ करती है, याने जैसा हो, वैसा ही कहा जाय। यों दिखाने के लिए कुछ कर देना या कह देना ठीक नहीं होता। जनता सर्वत्र उत्साह और श्रद्धा दिखलाती है, पर उसके पास 'सत्यनिष्ठा' के सिवा और भी एक चीज हुआ करती है, जिसे 'भावनिष्ठा' कहा जाता है। कितने ही भक्त ऐसे मिलते हैं, जो यह कहते पाये जाते हैं कि 'हमें भगवान का दर्शन हो गया। भगवान मेरे पास रहते हैं, मुझसे खाना खाते हैं। मैं उनसे बातें किया करता हूँ, आदि-आदि।' इसके विपरीत योगियों की बात सुनें तो वह कुछ और ही है। वे कहते हैं कि हमने इतनी-इतनी साधनाएँ कीं, फिर भी पूरा ज्ञान नहीं हो पाया, पूरा दर्शन नहीं हो पाया। इस जन्म में तो भगवान का दर्शन संभव ही नहीं है। अभी बहुत तपना होगा। प्रश्न उठता है कि आखिर इनमें अच्छा कौन है? जब योगी ऐसा कहते हैं तो क्या भक्तों का ऐसा कहना सच है? मैं कहूँगा, सच है भी और नहीं भी। उनकी यह भावनिष्ठा है। उनकी कल्पना-शक्ति में ऐसा भास होता है कि जो होने को था, वह हो गया। यह भी अत्यन्त पवित्र भाव है और जिन्हें यह भाव होता है, सचमुच वे धन्य-धन्य हैं। लेकिन योगी सत्यनिष्ठ हुआ करता है। दोनों की हालत समान ही है। जहाँ एक को दर्शन हुआ, ऐसा भास होता है, वहीं दूसरे को वैसा भास नहीं होता। भक्त भावनिष्ठ होता है तो योगी सत्यनिष्ठ। सत्यनिष्ठ प्रतिक्षण यह नापता रहता है कि अभी कितना अन्तर शेष रह गया है। तब उसे पता चलता है कि अभी काफी अन्तर है। इस तरह दोनों तरह के विचार करनेवाले 'सज्जन' हुआ करते हैं। साधारण जनता सत्यनिष्ठापूर्वक ही प्रेम प्रकट करती है, ऐसा नहीं। प्रायः वह भावनिष्ठापूर्वक ही प्रेम प्रकट करती है। किन्तु कुछ विचारशील ज्ञानी लोग यह हिसाब रखते हैं कि किसपर कितना प्रेम किया जाय। जितना मन में प्रेम हो, उतना ही दिखाना चाहिए, ऐसा माननेवाले भी हुआ करते हैं। गुजरात में मुझे दोनों प्रकार के लोग मिले, यह देखकर बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

गुजरात में मैं बेकार नहीं बना

एक भाई ग्रामदान के बारे में बातचीत कर रहे थे। कह रहे थे कि 'ग्रामदान करने के लिए तो कुछ भी नहीं करना पड़ता। जब लोगों का विश्वास बैठ जाय तो बस हो गया। फिर उनसे पूछिये कि 'भाई! ग्रामदान के लिए तैयार हैं?' तो वे यही कहेंगे कि 'हाँ, हम लोग तैयार हैं।' साधारण जनता में अत्यधिक भावनिष्ठा हुआ करता है। यदि उसकी किसी पर श्रद्धा बैठ जाय तो वह उसके लिए मर मिटती है। यदि श्रद्धा न बैठे तो वह घर में चुप्पी साधकर बैठ जाती है। बीच की स्थिति वह कभी स्वीकार नहीं करती। या तो अनुयायी बन जाती है या अलग ही रहती है।' जनता की ऐसी ही मनःस्थिति हुआ करती है और इसे मैंने जैसे अन्य प्रान्तों में देखा, वैसा यहाँ भी देखा। किन्तु विशेष बात यहाँ यह देखी कि सभीने आवश्यकताभर अपना प्रेम दिखलाया याने जितना

प्रेम दिखलाने का उनपर उत्तरदायित्व था, उतना दिखलाया। इसलिए मैं मानता हूँ कि गुजरात में मैं बेकार नहीं रहा। यानी गुजरातवालों ने मुझे बेकार नहीं बनाया। यों तो जान-बूझकर कोई भी प्रान्तवाले मुझे बेकार करना नहीं चाहेंगे, लेकिन मानव बेकार बन जाता है और वह सहज ही बन जाता है। इसलिए यहाँ मुझे जो प्रेम मिला, उसकी मैं बहुत अधिक कीमत करता हूँ।

मुझे आशा है कि मैं जब यहाँसे जाऊँगा तो आप लोग हिसाब की शुरूआत करेंगे। तब आप 'हमने इतना काम किया और इतना बाकी है' इसका हिसाब कर उसे पूरा करेंगे, इसका मुझे पूरा विश्वास है। जब मैं अन्य प्रान्तों में गया तो मेरी उपस्थिति में काफी काम किया गया, लेकिन मेरे जाने के बाद ऐसा हो गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं होगा, यहाँ मेरे जाने के बाद काफी काम होगा। क्योंकि मेरे रहते कुछ काम नहीं हुआ है।

भक्ति दो प्रकार की होती है—संयोग-भक्ति और वियोग-भक्ति। लक्ष्मण राम के साथ रहकर ही भक्ति किया करता था, इसलिए वह संयोग-भक्ति थी और भरत राम की अनुपस्थिति में भक्ति करता रहा, इसलिए वह वियोग-भक्ति थी। जनता इन दोनों भक्तियों का अनुभव किया करती है। कुछ उत्तरदायी लोग संयोग में विशेष भक्ति नहीं दिखलाते, वियोग में ही पूरी भक्ति करते हैं। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर लगता है कि हमारी अनुपस्थिति में आप समस्त कार्यकर्ता निश्चय ही डटकर काम करेंगे। मेरे विचार आप सुन चुके हैं। उन्हीं विचारों को आधार बनाकर आप सक्रिय बनें। विचार से प्रेरित होकर जहाँ कार्यारंभ किया जाता है, वहाँ प्रारंभ में काम भले ही आहिस्ते-आहिस्ते हो, लेकिन वह ठोस होगा।

असीम और ससीम त्याग के परिणाम !

एक बार गांधीजी ने स्वयं कहा कि 'मेरे त्याग के विषय में लोग बहुत कुछ कहा करते हैं, लेकिन मैं तो हिसाब से ही त्याग करता हूँ। कब कितने त्याग की जरूरत है, यह देखकर ही मैंने अब तक त्याग किया है। कितने ही लोग बे-हिसाब एकदम त्याग कर देते हैं। उनके प्रति मेरे दिल में अत्यन्त आदर उत्पन्न होता है, फिर भी मैं वैसा कुछ भी त्याग नहीं करता। एक-एक कदम नाप-जोखकर प्यार करना ही मुझे इष्ट है।' मैं समझता हूँ कि कदाचित् बापूजी ने पहले प्यार का कदम धीरे-धीरे ही उठाया हो, फिर भी अन्त में तो उन्होंने एकदम बे-हिसाब ही त्याग कर डाला। सभी यही कहते हैं और यही दीखता भी है। नोआखाली से लेकर उत्तरकाण्ड की समाप्ति तक उनका सारा चरित्र अपूर्व त्याग से भरा हुआ है। कितने ही लोग आरंभ से ही बे-हिसाब त्याग कर बैठते हैं, लेकिन लम्बे अर्से तक त्याग करना पड़ता है तो कोई भी आदमी उसे हिसाब से ही करता है। फिर भी जब उसे अधिक जीना नहीं होता तो पुनः वह बे-हिसाब त्याग कर बैठता है। गांधीजी के 'करेंगे या मरेंगे' का यही रहस्य है। शंकराचार्य भी बहुत समय तक जीवित नहीं रहे। अतः उन्होंने पहले से ही बे-हिसाब त्याग कर डाला। उनके त्याग का कुछ हिसाब ही नहीं। उन्होंने पहले से ही मान लिया कि जिन्दगी बहुत ही थोड़ी है, इसीलिए बे-हिसाब त्याग कर डाला।

जो तत्त्वज्ञानी, गणिती होते हैं, वे कभी कुछ भी हिसाब से बाहर नहीं करते। इसलिए वे दीर्घजीवी भी होते हैं। साधारणतः देखा जाता है कि तत्त्वज्ञानी काफी दीर्घजीवी होते हैं, जब कि वे भक्त और त्यागी दीर्घजीवी नहीं होते। विवेकानन्द बहुत ही कम अवस्था में चले गये। मैंने देखा है कि जिनके चित्त में भावनाओं का प्रबल आवेग रहता है, किसी तरह की परवाह किये बिना ही प्रबल आवेग में जो खूब काम कर गुजरते हैं, वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह पाते और न उसकी उन्हें कोई चिन्ता ही होती है। बापू हमेशा दो शब्द कहा करते थे। वह उनका स्वभाव ही बन गया था। वे शब्द थे 'करीज छुटिये।' याने करके ही छोड़ें। इसी 'छोड़ने' को हिन्दुस्तान में शास्त्रों में 'मुक्ति' कहा जाता है। 'हम सेवा करके छोड़ें' ऐसा ही हमें भी मानना चाहिए। मैं शान्ति-सेना की चर्चा किया करता हूँ, उसके लिए कुछ करना-धरना नहीं होता, सिर्फ अपना दिमाग शान्त रखना पड़ता है और समय आने पर 'मरकर ही छूटना' पड़ता है।

विज्ञानयुग में बे-हिसाब त्याग भी उचित

जिन्हें मुक्ति की अत्यधिक उत्कण्ठा हो, वे बे-हिसाब त्याग करते हैं। जिन्हें सेवा करने की इच्छा हो, वे हमेशा हिसाब से ही त्याग करते हैं। वे धीरे-धीरे सेवा करते रहना अपना ध्येय मानते हैं। गांधीजी में भी आरंभ में ऐसी ही योगबुद्धि थी, पर अन्त में वह सांख्यबुद्धि में ही परिणत हो गयी। याने अन्त में उन्होंने बे-हिसाब त्याग कर डाला। इस दृष्टि से विचार करें तो मेरी ओर से आप लोगों को पूरी छूट है। साधारणतः मैं यही चाहूँगा कि आप लोग दीर्घजीवी हों और दीर्घकाल तक सेवा करते रहें। एक भी कदम पीछे हटने की जरूरत नहीं है। बिना पीछे हटे प्रतिदिन आगे बढ़ते रहें, यही मेरा आशीर्वाद है और यही मैं चाहता भी हूँ। लेकिन यदि आपमें से कोई एकदम त्यागकर छूटना, मुक्त होना चाहे तो उसे भी मेरी ओर से छूट है। यह विज्ञान का युग है। इस युग में हम उतावली न करें तो न जाने दुनिया का क्या हाल होगा ? आज दुनिया इतनी विलक्षण हो गयी है कि कब क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। बड़ी ही तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं और होते रहेंगे। इस बीच हम पिछड़ जायँ, यह भी सम्भव है। अतः विज्ञान-युग के परिणामस्वरूप कोई तीव्र त्याग करे, एकदम बे-हिसाब त्याग करने के लिए कूद पड़े तो वह भी गलत न कहा जायगा।

अखबार में आज ही खबर पढ़ी है कि यहाँसे चन्द्रलोक में जो राकेट छोड़ा गया, वह पृथ्वी से लगभग २॥ लाख मील दूर पहुँच गया। अब चन्द्रमा वहाँसे कुल चार हजार मील ही रह गया। अब राकेट सूर्य के आसपास भी घूमेगा। अब तक राकेट पृथ्वी का उपग्रह था और पृथ्वी के आसपास ही घूमता था। लेकिन अब जो राकेट छोड़ा गया, वह सूर्य के आसपास घूमेगा, जैसे कि चन्द्रमा पृथ्वी के और पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है। इसके फलस्वरूप मानव क्या कर डालेगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि सद्बुद्धि कायम रहेगी तो मानव नयी दुनिया बसा लेगा—चन्द्र और मंगल लोक में बस्तियाँ बस सकती हैं। यदि इन औजारों का दुरुपयोग करने की उसे बुद्धि हो जाय तो मानवता और मानव, दोनों समूल नष्ट हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में आप जैसे लोग भक्तों जैसी उत्सुकता के साथ काम करें तो उसका मैं स्वागत करूँगा। लेकिन हिसाब के साथ लोभवश एक कदम भी पीछे न हटने का निश्चय कर रोज यही काम करना है, इस खयाल से त्याग करें तो उसका भी स्वागत करूँगा। इनमें से आप जो भी करना चाहें, करें।

प्रार्थना-प्रवचन

मोमनदवास (साबरकाँठा) ३-१-'५९

सामाजिक एकरसता अत्यावश्यक

मानव जन्मता है। फिर उसे बाल्य, तारुण्य, वृद्ध इस प्रकार एक के बाद एक अवस्था प्राप्त होती है। उनमें उसके शरीर में क्रमशः अन्तर पड़ता जाता है और उत्तरोत्तर नये-नये अनुभव आते रहते हैं। मानव इन अनुभवों से शिक्षा ग्रहण किया करता है। जीवन की कला जान लेने पर वह सुखी होता है और न जानने पर तो दुःखी ही रहता है। उसकी कसौटी यही है कि जीवन में उत्साह बढ़ रहा है या नहीं? शरीर जीर्ण होने के साथ ही उत्साह भी उसी गति से बढ़ना चाहिए। यदि ऐसा होता हो तो समझ लिया जाय कि उसे जीवन की कला अवगत हो गयी। यह बात व्यक्ति की तरह समाज पर भी लागू होती है।

विचार हवा में फैल गया

यह सच है कि स्वराज्य मिले १०-१२ वर्ष हो गये और इस बीच सांप्रदायिक कलह आदि के कारण देश में आवश्यक उत्साह नहीं बढ़ पाया। फिर भी अब धीरे-धीरे स्फूर्ति के नये-नये झरने बहने लग गये हैं। भूदान का काम ही देखिये! जब यह शुरू हुआ तो कितना स्वल्परूप में था और आज? किसी नदी की तरह कितनी तेजी से आगे बढ़कर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है! यह कोई साधारण बात नहीं। इसी तरह सर्वोदय-पात्र की कल्पना भी बड़े मार्के की है। आज इसमें यह कहने की हिम्मत आ गयी है कि देश के सात करोड़ घरों में सर्वोदय-पात्र रखे जायँ और उनमें रोज एक मुट्ठी अनाज डालें। हमें यह बढ़ता हुआ उत्साह स्थूल दृष्टि से नहीं दीख पड़ता, फिर भी वह भीतर-ही-भीतर बढ़ता जा रहा है। वह कल्पना से अधिक फैला है और फैलता जायगा। कारण अब तो यह विचार हवा में फैल गया है।

आज विज्ञान के साधन बढ़ रहे हैं। संभव है, दस-पन्द्रह वर्षों में मानव परलोक में जाकर पुनः वहाँसे वापस भी लौट आये। हवा में जो शक्ति छिपी पड़ी है, मानव उसका पता लगाता जा रहा है और नित्य ही वह उसके हाथ लग रही है। गत दस वर्षों के प्रयत्न के फलस्वरूप उसके हाथ में बहुत-सी नयी-नयी शक्तियाँ आ गयी हैं। ऐसी स्थिति में व्याप्त असमाधान को मिटाने के लिए यदि मानव के मूलभूत सद्गुणों को जगाने का कोई काम होता है तो वह सर्वत्र फैल जाता और उसकी ओर दुनिया का ध्यान आकृष्ट हो जाता है। इस दृष्टि से आप लोगों ने यहाँ सर्वोदय-पात्र की जो स्थापना की है, वह अभिनन्दनीय है।

अब ये बाड़े नहीं चाहिए

मुझे बताया गया कि अभी यहाँ मुसलमानों ने सर्वोदय-पात्र नहीं रखे हैं। इसकी कोई चिन्ता नहीं। आज नहीं रखे तो कल अवश्य रखेंगे, जब कि इसका वास्तविक उद्देश्य समझ जायगे। आज हमें कोई अच्छा भी काम एक साथ करने को सूझता ही नहीं, क्योंकि अभी यहाँ एकरस समाज बन नहीं पाया है। अनेक धर्म, अनेक उपासनाएँ, अनेक भाषाएँ चलती हैं। किसी समय यहाँ बाहर से आनेवालों को अपने में मिलाने के लिए जाति प्रथा का सर्जन हुआ, जिससे एक-दूसरे को तकलीफ न हो। लेकिन आज ये ही बाड़े हमें तकलीफ दे रहे हैं, अतएव हम चाहते हैं कि ये मिट जायँ। आज समाज में बहुत कुछ समता आ गयी है। अतः अब इन बाड़ों की आवश्यकता नहीं रही।

गाँवों को इकाई बनायें

सबको एक करने की जो शक्ति पहले आत्मज्ञान में थी, आज उससे कहीं अधिक शक्ति विज्ञान में आ गयी है। हम देखते हैं कि प्रायः सभी शिक्षितों के पास फाउण्टेन पेन, घड़ी आदि बहुत-सी चीजें सर्व-साधारण हो गयी हैं और बाहर से बहुत कुछ समता दीखने लगी है। किन्तु यदि अन्दर से भी यह समता न आयेगी, समाज एकरस न बनेगा तो भारी नुकसान होगा। यह सच है कि देश विशाल होने के कारण हमारा समाज एकरस नहीं बन पाया, फिर भी राष्ट्र एकरस अवश्य बन गया है। यह बहुत बड़ी बात है। इसमें हमारे ऋषियों का दीर्घ-दर्शन ही काम कर रहा है। अब हमें अपने गाँवों को भी एक परिवार बनाना है। आज तक जैसे परिवार की इकाई रही, वैसे ही अब गाँव की इकाई बनती है। अब तक जो भावना परिवार के प्रति बनी रही, उसे गाँव के प्रति लाया है। अभी उससे आगे बढ़ना नहीं है। गाँव के बच्चे सभीके बच्चे माने जायँ और गाँव की माँ सभीकी माँ बनें। पूरा गाँव व्यापक बनाया जाय। कोई अकेला काम न करे, सभी मिलकर किसी भी कार्य-योजना को करें। यदि इस तरह किया जाय तो गाँव एकरस बनेगा और उससे भारत में आर्थिक और सामाजिक क्रांति हो सकेगी। इस क्रांति का आधार प्रेम और करुणा की शक्ति होगी, जो हरएक को प्राप्त हो सकती है। आइये, इसी शक्ति का उपयोग कर हम सब एक हों और क्रांति करके समाज बदल डालें। गाँव की जमीन सबकी कर दें, गाँव की एक दूकान बना दें, गाँव का न्याय गाँव में ही करें। गाँव के लिए एक सुव्यवस्थित योजना बनायें और उसे हम गाँववाले ही पूरा करें। परिवार में जो प्रेम रहता है, उसे गाँव तक व्यापक कर दें। गाँव में किसीको विवाह-शादी में कर्ज निकालने की नौबत न आये, सारा गाँव ही उसे उठा ले और वह गाँव का उत्सव बन जाय। आज हम जो व्यक्तिगत रूप में योजना करते हैं, वह गाँव के लिए होना चाहिए। यह बात इस युग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम विज्ञान के इस युग में अपनी-अपनी खिचड़ी पकाते रहेंगे तो कहींके न रहेंगे। अतः सारे गाँव से एकरस होकर ग्राम का संयोजन करें। यदि गाँव-गाँव के लिए ऐसा हो तो वे सारी दुनिया में व्यापक हो जायँगे।

अनुक्रम

१. साधना के सोपान
नवावास ४ जनवरी '५९ पृ० १८५
२. आप सरकारी नौकर नहीं हैं
भीलोड़ा ११ जनवरी '५९ पृ० १८९
३. संयोग से बचनेवालों के लिए
चांडप ६ जनवरी '५९ पृ० १९०
४. सामाजिक एकरसता
मोमनावास ३ जनवरी '५९ पृ० १९२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।